Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-13, Issue-1, June 2019
Impact Factor: 4.081
www.researchguru.net

महात्मा विदुर की नीति का दार्शनिक चिन्तन

देवदास साकेत
शोधछात्र–दर्शनशास्त्र विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
ईमेल–devdasphilosophy@gmail.com
मो. 9479648349

सारांश :–

महात्मा विदुर की नीति का दार्शनिक चिन्तन विषय पर शोध पत्र बनाने का एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। धर्म निरपेक्षता का आशय है, कि जो सम्पूर्ण धर्मों को एक रूप में देखता हो। उसके सभी अनुयाईयों को स्वतंत्र रूप से धर्म कि क्रियाओं को करने मे बल प्रदान करता है, जबकि संवैधानिक रूपों में भी महत्व दिया गया है। मानव कल्याण की पहली सीढ़ी ही धर्म है। धर्म विहीन समाज और व्यक्ति का विकास नहीं हो सकता है। व्यक्ति के मन में जब अहम के भाव जागृत होते हैं। तब वह मेरा ही धर्म सर्वोच्च है, ऐसा अलाप व्यक्ति के मन में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार से शब्दों के द्वारा साम्प्रदायिकता जन्म लेती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति में मेरा भी धर्म श्रेष्ठ है और आपका भी धर्म श्रेष्ठ है। इस प्रकार की विचारधारा से साम्प्रदायिक मतभेद नहीं उत्पन्न होगें। धर्म वही है, जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड आधृत है। धर्म ही एक ऐसा शास्त्र है, जो प्राणी मात्र के जीवन का आधार है। अगर हम प्राचीन काल की बातों का अनुसरण करें, तो धर्म से ही मनुष्य में संस्कारों का जन्म हुआ है। धर्म के दार्शनिक आधार को खोजनें का अगर प्रयास करें। तब उससे पता चलता है, कि आश्रम व्यवस्था भी धर्म के एक महत्वपूर्ण अंग रही है। इन्हीं आश्रम व्यवस्था से संस्कारों का प्रशिक्षण और आत्मनुशासन ब्रह्मचर्य अवस्था में व्यक्ति सीखते थें। संस्कार ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं। संस्कारों से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

शोध प्रविधि :– इस शोध पत्र में वर्तमान प्रासंगिकता के आधार पर द्वितीयक शोध सामाग्री के तथ्यों का संकलन करते हुए शोध पत्र तैयार किया गया है।

शब्द कुन्जी :– **संप्रदायिकता, राष्ट्र, धर्म, हिंसा, आत्मदर्शन, नैतिक मूल्य, प्रशिक्षण और शोषण आदि**

धर्म के पालक महात्मा विदुर ने नीति का निर्माण कियें। महात्मा विदुर ने श्लोक के माध्यम से धर्म से विमुख होने वाले व्यक्तियों का वर्णन किया है।

यहाँ विदुर के दार्शनिक दृष्टिकोण के माध्यम से महाराज धृतराष्ट्र को धर्महीनता की बातों को बतातें है। महाराज साधारण मनुष्यों को नीद नहीं आने के अनेकों कारण होते हैं, जिसे बलवान पुरूष से विद्रोह हो, जिसका सम्पूर्ण चित्त छिन गया हो। साधन विहीन हो गया हो, जो व्यक्ति काम में लिप्त हो गया हो, चोरी के बारे में हमेशा सोचता हो। दूसरे के धन, सम्पत्ति को हड़पना चाहता हो। उसे नींद कैसे आ सकती है? इसमें से ऐसे कोई दोष आपके हृदय में तो नहीं आ गये हैं। अगर ऐसे दोषों से आप मुक्त है।[1]

मनुष्य को किसी के पराये धन की लालसा नहीं करनी चाहिये। हमेशा कल्याण और धर्म सम्मत आचरण करना चाहिये। धर्म से अलग नहीं होना चाहिये। धर्म से अलग होने पर

---

[1] **अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्। हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः।।**
कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्मृष्टोऽसि नराधिप। कच्चिच्च परवित्तेषु गृध्यन्न परितप्यसे।।[1]
विदुर नीति उद्योग पर्व से 1/13 एवं 1/14

अनेकों रोग लग जाते हैं, जिसके कारण व्यक्ति का ही नहीं उसके सम्पूर्ण कुल का विनाश हो जाता है।

कुल के विनाश से सनातन धर्म के दोनों कुल नष्ट हो जाते हैं। धर्म से अलग अधर्म के मार्ग से सम्पूर्ण परिवार में पाप, अनिष्ठता, नीचता जैसे दुर्गुण फैल जाते हैं। ऐसे कर्म न करने के बारे में मनुष्य को हमेशा सोचते रहना चाहिये। सद्कर्म मे ही मानव कल्याण की भलाई है।[2]

मनुष्य अगर अहंकार बल, घमण्ड, काम (वासना) तथा क्रोध युक्त हो गया हो, दूसरे के शरीर में स्थित परमेश्वर को देखकर दुर्भवना रखता हो। उसके जीवन मे बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। वर्तमान समय मे ऐसे कठिनाईयों के शिकार न जाने कितने लोग हो रहें हैं। फिर भी अपने बल का अनियंत्रित प्रयोग करते जा रहे हैं।[3]

धर्म व्यक्ति के आत्मा और शरीर का समन्वय है। इन्हीं गुणों से मनुष्य में संस्कारों का बीज शरीर के विकासात्मक दिशा ओर ले जाते हैं। धर्म मनुष्य की तरह समाज के सभी गुणों का समन्वय है। धर्म से ही संस्कार उत्पन्न होते हैं। संस्कारों से समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है।

मनुष्य मे दुर्गुण जैसे दोष पाप, अधर्म की श्रेणी में आते हैं। इनसे मुक्ति प्राप्त करने का साधन ही संस्कार है। संस्कारिक शिक्षा से व्यक्ति अज्ञानरूपी अधर्म से दूर होता है। भारतीय परम्परा में धर्म और संस्कृति का प्रगाढ़ सम्बन्ध रहा है। धर्म से नित्य, नैमित्तिक, काम्य और आपद्धर्म इत्यादि, कि प्राप्ति होती है। नित्य ऐसा धार्मिक कार्य है, जिसका प्रत्येक व्यक्ति पालन करता है और न करने से अधर्म और पाप का समाना करना पड़ता है। नैमित्तिक धर्म को करने के लिए विशेष अवसरों की आवश्यकता होती है। काम्य धर्म वही है, जिसमें महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति समाहित हो। ऐसे कार्यो को न करने पर किसी प्रकार का दोष नहीं उत्पन्न होता है। आपद् धर्म वह है, जिसमें भारी संकट की स्थिति में विशेष और सामान्य धर्मों को छोड़कर सामना करना पड़ता है। इनके दोष की विधि का भी वर्णन किया गया है, कि व्यक्ति को यह कार्य शास्त्रानुसार ही करने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।[4]

धर्म को धारण करने के लिए कर्म की अवश्यकता होती है। अर्थात् आचरण की जरूरत पड़ती है। ऐसा नहीं की ब्राह्मण का बालक ही धर्म सम्मत् कार्य करेगा। या क्षत्रिय का पुत्र ही धर्म का पालन करेंगा, या धनिक ही धर्म के पथ पर चलेगा। इस प्रकार की शिक्षा धर्म नहीं देता है, जबकि हम अगर देखे की महाभारत काल में धर्म से सर्वगुण सम्पन्न धर्म सम्मत आचरण करने वाले महात्मा विदुर दासी पुत्र थें। जिन्होंने धर्म की राह पर अड़िग रह कर नीति का निर्माण किया। ऐसे देवतुल्य महात्मा विदुर के मन में तनिक भी कौरवों और पॉडवों के बीच द्वेषु नहीं था। महात्मा विदुर सत्य के पालक होने के कारण धर्म से कभी विचलित नहीं हुए। उनके बीच में उन्हीं के भ्राता सम महाराज धृतराष्ट्र अन्धे होने के कारण महात्मा विदुर के सत्य और धर्म को न समझ पाने की स्थित में कुल का नाश कर लिये। अधर्म के मार्ग पर चलने से धर्म को ठुकराते चले गये, जिसका परिणाम विधंषक हुआ।

---

[2] **कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्त्रमधर्मोऽभिभवत्युत।।**[2]

श्रीमद्भगवद्गीता 1/40

[3] **अहVारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः। मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।**[3]

श्रीमद्भगवद्गीता 16/18

[4] *हिन्दू धर्म कोष पृ./340*

इसी प्रकार राज्य के सम्बन्ध में आचार्य शुक्राचार्य ने धर्म के निर्णय की व्याख्या की है, कि राज्य संचालन के लिए पूर्वोक्त कुल के धर्म को मानने वाले सभ्यों के निर्णय सब को माननीय होते हैं। उसी प्रकार जज के निर्णय सभी को मान्य होते हैं। इसी तरह सभी निर्णय धर्मानुकूल धर्म का पालन करने वाले राजा के निर्णय प्रजा को मान्य होता है। नैतिक नियमों की व्यवस्था के अनुरूप आज भारतीय संवैधानिक पद पर आसीन न्यायाधीशों का निर्णय सम्पूर्ण मानव को मान्य होता है। ऐसे धर्म का पालन करने के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है। अन्यथा अधर्म के निर्णय की सजा निर्णय करने वाले को भी मिलती है, जिस प्रकार से महाराज धृतराष्ट्र को अपने कुल का नाश ही करना पड़ा। इस देश में बहुत से धार्मिक विद्वान पैदा हुए। परन्तु युद्विष्ठिर ही मात्र धर्मराज के नाम से सम्बोधित किय गयें। धर्ममय जीवन जीने वाले महाराज युद्विष्ठिर थे। धर्म पालन के कारण आज तक धर्मराज के नाम से प्रसिद्ध है। धर्मशास्त्रों के जितने लक्षण बतलायें गये है। वह सभी के सभी गुण उनमें विद्यमान थे।[5]

आचार्य मनु ने धर्म के जो दस लक्षण बतायें है। मनुष्य को धैर्य, क्षमा, विकार, पराया धन का लोभ, शौच (मन की स्वच्छता), इन्द्रियों पर नियंत्रण, शास्त्रों के ज्ञान चछुओं का ग्रहण करने वाला, आत्मज्ञान, सत्य बोलना, क्रोध का मन से त्याग, यह दश लक्षण धर्म का सर्वश्रेष्ठ रूप है, जिसमें ऐसे गुण होते हैं। वह अपदा आने पर भी विचलित नहीं होता और डटकर सामना करता है। ऐसे ही गुण महात्मा विदुर और धर्मराज युद्विष्ठिर में विद्यमान थे। यह धर्म का पालन कर्म के प्रति सजकता के गुणों का ज्ञान प्राप्त होता है।[6]

इसके साथ–साथ गीतोक्त के दैवी सम्पदा के छब्बीस लक्षण थें।

भय का सर्वथा त्याग, अन्तःकरण की पूर्ण स्वच्छता, ध्यानयोग के द्वारा तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति में दृढ़ संकल्प, हृदय से सत्य का दान, इन्द्रियों में नियंत्रण, भगवान, पित्र, गुरूजनों तथा अग्रिहोत्र की पूजा अर्चना के लिए उच्च कोटि के विचारों से वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन, प्रभु के नाम और गुणों की भजन कीर्तन, स्वधर्म के पालन में कष्टसहन करते हुए शरीर इन्द्रियों के साथ अन्तः करण की शुद्धता। मन, वाणी और शरीर से किसी को भी कष्ट नहीं देना। अर्थात् और प्रिय भाषा का संचालन, अपने अपकार और तृष्कार पर भी क्रोधित नहीं होना। कर्मों और कर्तव्यों पर अहंकार नहीं करनो, अन्तः करण की सुचिता और उपरति से चित्त की चंचलता को वश में रखना। निन्दा का भाव किसी पर भी नहीं लाना, सभी प्राणियों में दया का भाव, इन्द्रियों के साथ विषय संयोग से उस पर आशक्ति का परित्याग करना। हृदय की कोमलता, लोक तथा शास्त्रों के विरूद्ध विचार नहीं करना, लज्जा जैसे व्यर्थ बातों को मन में न लाना। किसी पर किये गये परोपकर का अभिमान किसी भी मनुष्य को नहीं करना चाहिये। तेज, क्षमा, धैर्य, बाह्य आचरण की शुद्धता का और किसी भी प्राणी से शत्रुता का भाव नहीं रखना, ऐसे गुणों वाला मनुष्य सदाचार और कल्याण के मार्ग को प्रस्सत होता है।[7]

---

[5] **कुलादिभ्योऽधिकाः सभ्यास्तेभ्योऽध्यक्षोऽधिकः कृतः। सर्वेषामधिको राजा धर्माधर्मनियोजकः।।[5]**

शुक्रनीति 4/31

[6] **धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर् विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[6]**

मनुस्मृति 6/92

[7] **अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः। दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।1**
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।2
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता। भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।3[7]

श्रीमद्भगवद्गीता 16/1,2,3

महर्षि पतांजलि ने धर्म पालन के लिए अष्टांग मार्ग के नियामों का उल्लेख किया है–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। ये गुण धर्मराज युधिष्ठिर में मौजूद थें। महाभारत से उद्घृत सामान्य कत्तर्व्य और धर्म के वह आदर्श माने जाते हैं। धर्मराज युद्धिष्ठिर का सम्पूर्ण जीवन सद्गुण और सदाचार से पूर्ण रहा है। महाराज युद्धिष्ठिर के विरता का और धैर्य, क्षमा, क्रोध जैसे सद्गुणों के लिए महात्मा विदुर ने उनको पग–पग पर नीति कल्याण और जीवन रक्षक धर्म का निर्वहन किया है, जबकि महात्मा विदुर और धर्मराज युद्धिष्ठिर का सत्य के प्रति बहुत ही अड़िग प्रेम था। सत्य के लिए अनेकों प्रकार की यतनायें सह रहे थें।

वर्तमान सन्दर्भ मे अगर हम कहें, तो नैतिक मूल्यों का हास्य होता जा रहा है। देश में अतिभौतिकवाद के नये–नये चेहरे सामने आ रहें है। जो वैज्ञानिक अनुसंधान का नाम लेकर मानवता को मानवता के स्थान पर जड़वत यंत्र बनाने की होड़ सी लगा दिये है। नैतिक मूल्यों का तेजी से विघटन जैसी स्थित निर्मित हो गई हैं। मनुष्य में अशान्ति, हिंसा अनाचार, दुराचार जैसी प्रवृत्तियाँ घर कर गई है। ऐसी दशा में सम्प्रदायिकता भी बड़ी तेजी से मानव–मानव पर हावी होती जा रही हैं। किसी विषम परिस्थिति में अशांति का मूलकारण यह भी रहा है, कि यदि मनुष्य अपने धर्मशास्त्रों, भारतीय नीति के निर्धारक तत्वों और शास्त्रों को समझने का प्रयास नहीं करता है। वह हमेशा उसकी उपेक्षा करता रहा, जिसका परिणाम मर्यादाहीन, स्वेच्छाचारी बनता गया। यह मनुष्य धन, ऐश्वर्य की लालसा में नैतिक सुख–'सुविधाओं को अनियंत्रित रूप से प्राप्त करने की होड़ लगाता रहा है। इसी कारण अर्न्तआत्मा की आवाज, दया, करूणा, मुदिता और मानवीय मूल्यों के सद्गुणों को निगल लिया है। सत्य–असत्य, धर्म–अधर्म को न पहचानने के कारण मनुष्य मानव की जगह दानव का रूप ले लिया है।

धर्म ग्रन्थों से उद्ववेलित है, कि दया के स्वरूप न धर्म है, न ही तप है, न ही दान। यहाँ तक कहा गया है, कि दया के समतुल्य कोई मित्र भी नहीं है। इस प्रकार ज्ञान से व्यक्ति को इस संसार के आत्मज्ञान से घोर अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार, हिंसा से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग ढूढ़ना चाहिये। आज देश मे देखा जाये, तो बहुत ही अमानवीय व्यवहार, क्रूरता, शोषण, उत्पीड़न जैसे नग्न चित्र दिखाई दे रहे हैं। वृद्ध माता–पिता के साथ घोर अमानवीय यातनाएँ और उपेक्षा की जा रही हैं। सप्ताह का कोई ऐसा दिन नहीं है, कि जिसमें हत्याएँ न होती हो। हत्याओं में मानव प्राणी से लेकर अनेक जीव–जन्तुओं की हत्याएँ पैसे की लालच में की जाती है। ऐसा अधम मानव का कृत्य शास्त्रों के अनुकूल नहीं है और यही मानवीय मूल्यों को तार–तार कर रहा है।[8]

इन दुगुणों से बचने के लिए धर्म शास्त्रों की मर्यादाओं का पालन करना आवश्यक है, जिससे मानव समुदाय ही नहीं सम्पूर्ण प्राणी और राष्ट्र का भी कल्याण निहित है।

किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये। किसी भी प्राणी मात्र के अहित के बारे में नहीं सोचना चाहिये। मन, क्रम, वचन से भी कभी अप्रिय वाणी नहीं बोलना चाहिए। कभी किसी के धन (सम्पत्ति) की चोरी नही करना चाहिए। यहाँ तक कि ऐसे कृत्यों पर विचार तक भी मन में नहीं करना अधिक श्रेष्ठ होगा। चाहे वह सोना, तिनका, साग, मिट्ठी और जल आदि ही क्यों

---

[8] **न दयासदृशो धर्मो न दयासदृशं तपः। न दयासदृशं दानं न दयासदृशः सखा।।**[8]

कल्याण–नीतिशार पृ./137

न हो। ऐसा करने वाले अपनी मर्यादाओं को खो देते हैं। इसी प्रकार के व्यक्ति जिन्दा नरक के भी भागी होते हैं।[9]

वास्तविकता तो यह है, कि आज देश में इसके विपरीत स्थित है। धन की लालसा में विश्व का कोई ऐसा हिस्सा नहीं है। जहाँ हिंसा, झूठ, ठगी, फरेब, भ्रष्टाचार, दुष्कृत्य, चोरी, लूट–पाट, हत्याएँ, दूसरे के सम्पत्ति पर कब्जा, अपहरण तक की वारदातों को अंजाम न दे रहा हो।

निष्कर्ष :–

दार्शनिक दृष्टि की बात करें तो आचार्य शंकराचार्य ने मानव के ज्ञान और अज्ञान के गुणों का वर्णन किये हैं। अज्ञान के कारण ही अन्य वस्तुएँ विभाजित होकर दृष्टिगोचर नजर आती है। अनेकत्व भ्रमपूर्ण अज्ञान का परिणाम है। मनुष्य कहता है, कि मै मूर्ख हूँ, मैं दुःखी हूँ, मै सुखी हूँ, मै जीवित हूँ, मै मर भी जाऊँगा। ये सभी लक्षण अनात्म भावों के है। जन्म भी दुःख है और मृत्यु भी दुःख है। रोग–व्याधि भी दुःख है। वृद्धावस्था भी दुःख के इत्यादि कारण है। फिर भी दुःखदोशानुदर्शन से देहेन्द्रियादि, विषय भोगों में वैराग्य की उत्पत्ति होती है। या आत्मदर्शन की प्राप्ति होती है। मनुष्य की यह धारणा का ज्ञान जब प्राप्त होता है। तब मालूम होता है, कि दुःख और सुख का भोग ही संसार सागर है। ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू है, जिस प्रकार से गाड़ी एक पहिये के बल पर नहीं चल सकती।[10] उसी प्रकार सुख और दुःख के बिना जीवन का चक्र आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए मनुष्य को नैतिक मूल्यों का अनुसरण करना चाहिये। धर्म के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना ही परम् लक्ष्य है। यहीं महात्मा विदुर और अन्य भारतीय दार्शनिकों का मूल उद्देश्य रहा है।

सन्दर्भ :–

1. **हनुमान प्रसाद पोद्दार, विदुर–नीति (महाभारत–उद्योगपर्वसे),** गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2071, बावनवाँ संस्करण, पृष्ठ 19 एवं 20
2. **श्रीमद्भगवदगीता,** गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2071, तिरपनवाँ पुनर्मुद्रण, पृष्ठ 22
3. **वही,** पृष्ठ 206
4. **डॉ. राजबली पाण्डेय, हिन्दू धर्मकोश,** उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (उ.प्र.) संस्करण तृतीय 2003, पृष्ठ 340
5. **पं. श्रीब्रह्माशंकर मिश्रः, साहित्यशास्त्री हिन्दीव्याख्योपेता, शुक्रनीति**, 'विद्योतिनी', चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रण, वि.सं. 2065 सन् (2008), पृष्ठ 274
6. **शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः, मनुस्मृतिः,** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण प्रथम 2007, पृष्ठ 446
7. **श्रीमद्भगवदगीता,** गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2071, तिरपनवाँ पुनर्मुद्रण, पृष्ठ 200 एवं 201, पृष्ठ 16 एवं 17
8. **कल्याण, नीतिशार,** गीताप्रस, गोरखपुर, अंक, जनवरी एवं फरवरी 2002 ई., संस्करण 250000, पृष्ठ 137
9. **वही,** पृष्ठ 138
10. **वही,** पृष्ठ 148

---

[9] **न हिंस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् कंचित्। नाहितं नाप्रियं वाच्यं न स्तेनः स्यात् कदाचन।।**

तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा। परस्यापहरज्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते।।[9]

कल्याण–नीतिशार पृ./ 138

10 *कल्याण पृ.148*